मई १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धर्म आचरण में उतरे

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुजी के प्रवचनों की **दूसरी कड़ी**)

बार-बार समझते रहें कि धर्म क्या है?

"शुद्ध चित्त का आचरण, धर्म समझिये सोय" – चित्त शुद्ध हो जाय, निर्मल हो जाय और फिर आचरण में उतरने लगे, तो समझो धर्म है। धर्म की केवल चर्चा करके ही रह जायँ, धर्म पर केवल वाद-विवाद करके ही रह जायँ, तर्क-वितर्क करके ही रह जायँ और धारण नहीं करें, धर्म की शुद्धता की भी चर्चा ही चर्चा करें और धारण नहीं करें तो भाई, क्या लाभ होगा! तो धर्म नहीं हुआ, कोरी बातें हुई। तो ठीक ही कहा गया कि –

"धारण करे तो धर्म है, वरना कोरी बात"। कोरी बात न रह जाय। धारण करें, जीवन में उतारें। यदि एक आदमी समझता ही नहीं कि धर्म क्या है तो कैसे धारण करेगा?

एक व्यक्ति समझता है कि धर्म तो यही है कि चित्त को निर्मल करें और उसे आचरण में उतारें। ऐसा समझता तो है, पर फिर भी न चित्त को निर्मल करने का कामकरता है, न उसे आचरण पर उतारने का कामकरता है। तो भाई, इस व्यक्ति का बहुत बड़ा दुर्भाग्य ही है। दुर्भाग्य ही तो है।

क्रोध जगाता हूं और क्रोध के मारे व्याकुल हो जाता हूं, अशांत हो जाता हूं, बेचैन हो जाता हूं और पाठ करता हूं **वीतराग भय क्रोधः...** – वीतक्रोध हो जाना चाहिए, वीतद्वेष हो जाना चाहिए। अरे, इसी में शांति समायी हुई, इसी में सुख समाया हुआ, यही तो धर्म है। यही तो धर्म है पर धारण तो नहीं करता ना! कोरी बातें ही बातें, बुद्धि-विलास ही बुद्धि-विलास, वाणी-विलास ही वाणी-विलास। क्या करने लगे! धारण नहीं करेंगे तो धर्म से हमें लाभ कैसे मिलेगा? यह बात जो व्यक्ति जितनी जल्दी समझ जाता है, उसके लिए कल्याण का रास्ता उतनी जल्दी खुल जाता है। चलने लगता है उस पर, धारण करने लगता है। कोरी बातों में अपना समय नहीं खराब करता।

धर्म की चर्चा सुननी चाहिए, उस पर चिंतन-मनन करना चाहिए ताकि प्रेरणा जागे। एक धर्म-संवेग जागे – मुझे धारण करना है। मुझे धारण करना है। कैसे धारण करना है? किसी ने धर्म धारण किया कि नहीं, दूसरे कैसे जानेंगे? मेरा मन सचमुच निर्मल हुआ कि नहीं, सचमुच शांत हुआ कि नहीं, कोई कैसे जानेगा? निश्चित है मेरे व्यवहार से जानेगा। मेरे बाहर के कर्मों से ही जानेगा। मेरे शारीरिक कर्मों से जानेगा, मेरे वाचिक कर्मों से जानेगा।

मैं किसी निरपराध प्राणी की हत्या करता हूं। उसका प्राण हर लेता हूं तो शरीर से दुष्कर्म हुआ ना? मैं किसी परायी वस्तु को चुरा लेता हूं, छीन लेता हूं, झपट लेता हूं, लूट लेता हूं, अपनी बना लेता हूं – शरीर से दुष्कर्म हुआ ना? मैं व्यभिचार करता हूं, शरीर से दुष्कर्म हुआ ना? मैं वाणी से झूठ बोल करके किसी को ठगने की कोशिश करता हूं। मैं परनिंदा करता हूं, चुगली करता हूं। इसकी बात उससे बढ़ा-चढ़ा के कही, उसकी बात इससे कही और दो आदमियों को लड़ा दिया। मैं निकम्मी बातें करता हूं, निरर्थक बातें करता हूं। अपना भी समय खराब करता हूं औरों का समय भी खराब करता हूं। तो वाणी से दुष्कर्म हुआ ना?

शरीर से दुष्कर्म करूं, वाणी से दुष्कर्म करूं और इस नशे में भी रहूं, मैं बड़ा धार्मिक व्यक्ति हूं। अरे, मेरे जैसा धर्मवान कौन होगा? यह देखो, मैं अमुक मंदिर में जाकर के यह कर्मकांड पूरा कर आया। अमुक मस्जिद में जाकर के यह कर्मकांड पूरा कर आया। उस गिरजाघर में जाकर के यह कर्मकांड पूरा कर आया। उस चैत्य पर जाकर यह कर्मकांड पूरा कर आया। उस गुरुद्वारे में जाकर के यह कर्मकांड पूरा कर आया। अरे, मैरे जैसा धार्मिक कौन? अथवा मैं इस दार्शनिक मान्यता को मानने वाला हूं, उस दार्शनिक मान्यता को मानने वाला हूं। मेरे जैसा धार्मिक व्यक्ति कौन? धोखा हुआ ना? तेरे जीवन में धर्म उतरा नहीं। तेरे शारीरिक कर्मों में धर्म उतरा नहीं। तेरे वाणी के कर्मों में धर्म उतरा नहीं। कैसे धार्मिक हुआ?

शरीर के कर्म क्यों दूषित हुए? वाणी के कर्म क्यों दूषित हुए? क्योंकि मन का कर्म दूषित हो गया। मन में मैल जगने लगा। मैं किसी की हत्या तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि अपने मन में क्रोध न जगा लूं, द्वेष न जगा लूं, दुर्भावना न जगा लूं। हँसते-खेलते हुए कहां किसी की हत्या कर ले। कोई भी हो, बड़ा क्रोध जगाना होता है, द्वेष जगाना होता है, तब किसी की हत्या होती है। लोभ जगाना होता है, बहुत लोभ जगाना होता है, तब चोरी की जाती है। बहुत वासना जगानी होती है, तब व्यभिचार किया जाता है। अहंकार जागता है, और तरह-तरह के विकार जागते हैं तो वाणी के दुष्कर्म करता है, झूठ बोलता है, परनिंदा करता है, चुगली खाता है और मन को मैला करता है।

समझ तो गया कि मुझे मन मैला नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे ही मन को मैला करता हूं तो उसका पहला शिकार तो मैं ही बनता हूं। मैंने क्रोध जगा करके शरीर से या वाणी से कोई दुष्कर्म किया, उस दुष्कर्म की वजह से दूसरा व्यक्ति तो बाद में दुःखी हुआ, पहले मैं दुःखी हो गया। क्योंकि मैंने अपने भीतर क्रोध जगाया और क्रोध जगाते ही कुदरत ने मुझे दंड देना शुरू किया। व्याकुल हो ही जाऊंगा। दुखियारा हो ही जाऊंगा। किसी भी प्रकार का विकार जगा ले, व्याकुल हो ही जायगा, दुखियारा हो ही जायगा।

तो शरीर का दुष्कर्म, वाणी का दुष्कर्म अपने लिए भी हानिकारक हुआ, औरों के लिए भी हानिकारक हुआ। इस दुष्कर्म से बचें तो अपना भी मंगल होने लगे, औरों का भी मंगल होने लगे। बस, धर्म की इतनी सीधी-सी बात कि हमारे आचरण में धर्म उतरे। धर्म केवल चर्चा का विषय हो करके न रह जाय। चर्चा-परिचर्चा के लिए धर्म नहीं होता, धारण करने के लिए होता है। वाद-विवाद के लिए धर्म नहीं होता, धारण करने के लिए होता है। तर्क-वितर्क के

लिए धर्म नहीं होता, लड़ने-झगड़ने के लिए धर्म नहीं होता, मारपीट के लिए धर्म नहीं होता। अगर धर्म के नाम पर हम लड़ते हैं, झगड़ते हैं, मारपीट करते हैं, हत्याएं करते हैं तो समझो धर्म नहीं है। धर्म का नामोनिशान नहीं है। कहीं उलझ गये, धर्म के नाम पर कहीं भटक गये। अपनी भी हानि करने लगे, औरों की भी हानि करने लगे।

एक आदमी खूब समझता है कि मुझे हत्या नहीं करनी चाहिए, मुझे चोरी नहीं करनी चाहिए, मुझे व्यभिचार नहीं करना चाहिए। मुझे वाणी से कोई दुष्कर्म नहीं करना चाहिए। झूठ नहीं बोलना चाहिए, परनिंदा नहीं करनी चाहिए, कटुवचन नहीं बोलना चाहिए, इत्यादि-इत्यादि खूब समझता है। पर क्या करे, कोई नशा-पता कर ही लेता है। अब नशा-पता कर लिया तो होशोहवास खो बैठा। अब तो नशे का गुलाम हो गया। वह नशा जो करवाता है, वैसे ही किये जा रहा है। अपना होश तो खो दिया। गुलाम हो गया, उस नशे का गुलाम हो गया। तब समझदार लोगों ने कहा, नशे-पते से भी बचो।

कहना बड़ा आसान है। उसे बुद्धि के स्तर पर समझ लेना भी आसान है, हृदय के स्तर पर स्वीकार कर लेना भी आसान है। पर कैसे बचे? शराब पीने वाला खूब समझता है कि यह शराब मेरे लिए अच्छी नहीं, मुझे पागल बना देती है, अपना गुलाम बना देती है और इसके नशे में जो काम नहीं करने चाहिए, वैसे काम मैं कर जाता हूं। मुझे शराब नहीं पीनी चाहिए। यह मेरे परिवार के लिए बरबादी है, मेरी बरबादी है। नहीं पीनी चाहिए, खूब समझता है। पर क्या करे, जब समय आता है तो पी ही लेता है। जुआरी खूब समझता है, मुझे जुआ नहीं खेलना चाहिए। मेरे लिए बड़ा हानिकारक है। मेरे परिवार के लिए बड़ा हानिकारक है। नहीं खेलना चाहिए, नहीं खेलना चाहिए। पर क्या करे? जब समय आता है तो जुआ खेल ही लेता है। एक व्यभिचारी खूब समझता है, मुझे व्यभिचार नहीं करना चाहिए, यह अच्छा नहीं है। पर क्या करे, जब अवसर आता है तो व्यभिचार कर ही लेता है। क्रोधी आदमी खूब समझता है, अरे, मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए रे! क्रोध का पहला शिकार तो मैं ही होता हूं, मुझे नहीं करना चाहिए। पर क्या करे? जीवन में जरा-सी अनचाही बात हुई कि चिड़चिड़ाने लगा। जरा-सी मनचाही बात नहीं हुई कि चिड़चिड़ाने लगा, क्रोध जगा लिया और व्याकुल हो गया।

तो भाई, केवल बुद्धि के स्तर पर स्वीकार कर लेने से तो बात बनती नहीं ना? ऐसा क्यों होता है इसे समझना चाहिए। शराब नहीं पीनी चाहिए, ऐसा समझते हुए भी शराबी शराब क्यों पी लेता है? जुआ नहीं खेलना चाहिए, ऐसा समझते हुए भी जुआरी जुआ क्यों खेल लेता है? और भी अन्य दुष्कर्म नहीं करने चाहिए, ऐसा समझते हुए भी कोई दुष्कर्म क्यों कर लेता है? क्योंकि मन वश में नहीं है। जिसका मन ही वश में नहीं है वह बुद्धि के स्तर पर हजार समझता रहे, पर क्या करे बेचारा? अपने मन का मालिक नहीं है।

इसीलिए अपने यहां भारत की पुरातन परंपरा, धर्म की परंपरा बड़ी आदर्श परंपरा रही। इस परंपरा में कोरा उपदेश नहीं होता। धर्म यदि यह कहकर रके रह जाय –"ऐ दुनिया के लोगों, तुम्हें हत्या नहीं करनी चाहिए। तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए। तुम्हें व्यभिचार नहीं करना चाहिए। तुम्हें यह नहीं करना चाहिए, तुम्हें वह नहीं करना चाहिए। तुम्हें क्रोध नहीं जगाना चाहिए। तुम्हें द्वेष नहीं जगाना चाहिए।" और सुनने वाले सिर झुकाएं और कहें –"बहुत अच्छी बात कही। बड़ी अच्छी बात कही। बहुत अच्छा कहा, बहुत अच्छा कहा। यह धर्म की बात बड़ी अच्छी सुन ली।" लेकिन इस कान से सुनी, दूसरे कान से निकल गयी। रोज सुनते हैं ना! तो क्या हुआ? अमुक-अमुक दुष्कर्म करने तो नहीं चाहिए। पर मुख्य बात – कैसे नहीं करें? अपने मन के मालिक कैसे बनें?

तो अपने देश की पुरातन परंपरा रही कि कोरा उपदेश नहीं, उस उपदेश को जीवन में उतारने का तरीका भी सिखाओ। कोई व्यक्ति बुद्ध बनता है, शुद्ध बनता है, मुक्त बनता है, अरहंत बनता है, स्थितप्रज्ञ बनता है, अनासक्त बनता है, वीतराग बनता है, वीतद्वेष बनता है, वीतमोह बनता है, भवविमुक्त हो जाता है तो असीम करुणा से भर उठता है और जब वह लोगों को धर्म सिखाता है तो कोरा उपदेश नहीं सिखाता। इस उपदेश को अपने जीवन में कैसे उतारो? मन को कैसे वश में करो? इसका तरीका भी सिखाता है।

अनेक विद्याएं होती हैं, अनेक तरीके होते हैं, अनेक तरह की साधनाएं होती हैं जिनसे मन को वश में करना सिखाया जाता है। अपने भारत में एक ऐसी साधना भी चली, बहुत पुरातन साधना, बहुत पुरातन विद्या जो केवल मन को वश में करके ही नहीं रह जाती, मन के विकारों को जड़ों से निकाल देती है। अंतर्मन की गहराइयों में, मानस की तलस्पर्शी गहराइयों में जो विकार प्रजनन करने का स्वभाव बन गया। जब देखो तब राग पैदा करता है, जब देखो तब द्वेष पैदा करता है, अहंकार पैदा करता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के विकार पैदा किये जा रहा है, मन का यह स्वभाव हो गया। तो केवल ऊपर-ऊपर के मानस को स्वच्छ करके रह जायँ और यह गहराइयों तक विकार उत्पन्न करने का स्वभाव और उस स्वभाव-शिकंजे में जकड़ा हुआ हमारा मन, इसका सुधार न करें तो बात बनी नहीं। तो केवल चित्त को एकाग्र करना ही नहीं, केवल चित्त को ऊपरी-ऊपरी स्तर पर निर्मल कर लेना ही नहीं, जड़ों तक उसके स्वभाव को पलट लें ताकि इस तरह के विकारों का प्रजनन होना ही बंद हो जाय। और इस तरह के विकारों का जो पूर्व संचय अनेक जन्मों से इकट्ठा कर रखा है, उसको निकालने का बड़ा वैज्ञानिक रास्ता अपने भारत की इस बहुत-बहुत पुरातन विद्या में निहित है। यह विद्या अपने शुद्ध रूप में रहती है और लोग इसका शुद्ध रूप में प्रयोग करते हैं तो बड़ा कल्याण होता है, बड़ी फलदायी होती है, आशु-फलदायी होती है। यहीं इसी जीवन में स्वभाव बदलने लगता है। मानस का स्वभाव बदलने लगता है, चित्त गहराइयों तक निर्मल होने लगता है। तो धर्म जीवन में उतरने लगता है।

अपने देश की एक विद्या है। लेकिन शुद्ध रूप में हम नहीं रख पाते। इसमें यह दार्शनिक मान्यता की बात जोड़ी, वह दार्शनिक मान्यता की बात जोड़ी। इसके साथ यह कर्मकांड जोड़ दिया, वह कर्मकांड जोड़ दिया। इसको इस संप्रदाय की बाड़ेबंदी में बांधा, उस संप्रदाय की बाड़ेबंदी में बांधा, तो क्या करे बिचारी विद्या? दूषित

कर दिया ना? दूषित कर दिया तो हमारा कल्याण करने की इसकी जो शक्ति है, हमारे चित्त को निर्मल करने की जो शक्ति है, वह क्षीण हो गयी। क्षीण हो गयी तो लोग इसको क्यों धारण करेंगे, क्यों इसका अभ्यास करेंगे? जिस विद्या के अभ्यास से हमें उसका तुरंत फल मिलता हो, वह तो सब करेंगे। पर हम अभ्यास करें और लाभ तो अभी कुछ आता नहीं तो धीरे-धीरे यह विद्या लुप्त हो जाती है। ऐसा अपने देश में अनेक बार हुआ।

आज के २५००-२६०० वर्ष पहले यह चित्त-विशोधनी विद्या, वैज्ञानिक विद्या अपने भारत से लुप्त हो चुकी थी। कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ गौतम ने इसी सत्य की खोज में घर छोड़ा कि कोई तो विद्या होगी जो हमें सारे दुःखों से मुक्त कर दे, सारे विकारों से मुक्त कर दे। अनेक जन्मों से प्रयत्न करते आ रहा था। अनेक जन्मों से अपने धर्म का बल बढ़ाते आ रहा था। इस जन्म में भी बड़ा परिश्रम किया, पुरुषार्थ किया, पराक्रम किया और विद्या खोज निकाली। इसे विपश्यना विद्या कहते हैं। अपना मंगल साधा, अपने चित्त को निर्मल किया। शुद्ध हुआ, बुद्ध हुआ। सारे विकारों से मुक्त हुआ तो असीम करुणा से भर गया और बांटने लगा। सारे जीवनभर जो आया उसे बांटना शुरू किया। बांटते ही गया, बांटते ही गया। कुछ सदियों तक देश का बड़ा कल्याण हुआ। फिर दूषित कर दी विद्या को तो फिर लुप्त हो गयी। विकृत हुई कि लुप्त हुई। पड़ोसी देश में गयी और उसने इसे संभाल कर रखा। अपने शुद्ध रूप में संभाल कर रखा। सदियों तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी, गुरु-शिष्य परंपरा से बड़े शुद्ध रूप में संभाल कर रखा। भले थोड़े से लोगों ने ही रखा, पर शुद्ध रूप में कायम रखा तो अब अपने देश की यह पुरातन विद्या, अपने देश की यह पुरातन निधि फिर अपने देश में आयी है।

अपने देश में कभी तपोभूमियों की एक परंपरा थी। जगह-जगह गांव-गांव में, वनों में तपोभूमियां होती थीं। केवल गृहत्यागी संन्यासी ही नहीं, गृहस्थ भी इन तपोभूमियों में जाकर के इस विद्या को सीखते थे। इसका उपयोग करके, प्रयोग करके अपने मानस को निर्मल बनाते थे, अपना जीवन सुधारते थे। स्वयं सुखी होते थे औरों के सुख का कारण बन जाते थे। स्वयं शांति का लाभ उठाते थे, औरों के लिए शांति निर्माण करने का कारण बन जाते थे।

इस विद्या को भली-भांति समझें। यह बौद्धों की विद्या नहीं, हिंदुओं, जैनियों, मुसलमानों और ईसाईयों की विद्या नहीं, यह धर्म की विद्या है और धर्म तो सबका होता है। धर्म असीम होता है, अपरिमित होता है। धर्म सबके लिए कल्याणकारी होता है। तो समझें कि इस विद्या का कैसे अभ्यास किया जाता है।

किसी तपोभूमि में प्रवेश करना होता है। कम से कम दस दिनों के लिए किसी तपोभूमि में रह करके बड़े मनोयोग के साथ यह विद्या सीखनी होती है। बड़े परिश्रम के साथ, बहुत अनुशासनबद्ध हो करके सीखनी होती है और सीखते हैं तो कल्याण ही कल्याण होता है। मंगल ही मंगल होता है। अरे, धर्म धारण करने लगे ना! शुद्ध धर्म धारण करने लगे। चित्त को केवल वश में करने की बात नहीं, चित्त को निर्मल करने का धर्म धारण करने लगे। चित्त को केवल ऊपर-ऊपर से निर्मल करने की बात नहीं, जड़ों तक निर्मल करने का धर्म धारण करने लगे, मंगल ही मंगल होने लगा। कल्याण ही कल्याण होने लगा। जो-जो धर्म को धारण करे, कोरी चर्चा नहीं, धारण करे तो मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण। जो धारण करे उसी का मंगल, उसी का कल्याण। उसी की स्वस्ति-मुक्ति, स्वस्ति-मुक्ति।